दैनिक जागरण
बगैर सोचे बोलना बगैर निशाना साधे गोली चलाने जैसा है

प्रदूषण नियंत्रण का दिखावा

दिल्ली के साथ-साथ देश के एक बड़े हिस्से में वायु प्रदूषण के कहर के बीच सुप्रीम कोर्ट ने फिर से सक्रियता दिखाई। इसी के साथ केंद्र सरकार और दिल्ली सरकार भी अपने स्तर पर कुछ न कुछ करती हुई दिखाई दी, लेकिन शायद नतीजा ढाक के तीन पात वाला ही रहने वाला है। इसका प्रमाण यह है कि दिल्ली और उसके आसपास हवा की गुणवत्ता और खराब होती दिखी। इसका सीधा मतलब है कि सेहत के लिए घातक साबित होते प्रदूषण से बचने के लिए ठोस उपाय नहीं किए जा रहे हैं। इसका पता इससे भी चलता है कि तमाम डांट-फटकार के बाद भी पंजाब में पराली दहन पर प्रभावी रोक नहीं लग सकी है। यदि हमारे नीति-नियंता यह समझ रहे हैं कि प्रदूषण के गंभीर हो जाने के बाद उससे निजात पाने के आधे-अधूरे कदम उठाने से समस्या का समाधान हो जाएगा तो ऐसा होने वाला नहीं है। इस पर हैरानी नहीं कि दिल्ली में सम-विषम योजना पर अमल करने के बाद भी वायु प्रदूषण मे कोई उल्लेखनीय कमी नहीं आ सकी। खुद उच्चतम न्यायालय ने पाया कि यह योजना प्रदूषण नियंत्रण का प्रभावी उपाय नहीं। यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि सरकारें वायु प्रदूषण के मूल कारणों को समझने और उनका निवारण करने के लिए तैयार नहीं।

विचित्र बात यह है कि दिल्ली में वायु प्रदूषण बढ़ने पर तो शोर मच जाता है, लेकिन जब देश के दूसरे हिस्सों में ऐसा होता है तो अधिक से अधिक यह होता है कि इस आशय की कुछ खबरें सामने आ जाती हैं। क्या वायु प्रदूषण केवल दिल्ली के लोगों के लिए ही नुकसानदायक है? यदि नहीं तो फिर देश के दूसरे हिस्सों में फैले वायु प्रदूषण की चिंता क्यों नहीं की जाती? यह वह सवाल है जिसका संज्ञान लिया ही जाना चाहिए। इसी के साथ यह भी समझा जाना चाहिए कि केवल आदेश-निर्देश देने, बैठकें करने और चिंता जताने से वायु प्रदूषण से छुटकारा मिलने वाला नहीं है। बीते करीब एक दशक से अक्टूबर-नवंबर में वायु प्रदूषण उत्तर भारत के लिए एक आपदा जैसा साबित हो रहा है, लेकिन न तो पंजाब और हरियाणा की सरकारें पराली दहन की समस्या से निपटने के ठोस कदम उठा सकी हैं और न ही दिल्ली सरकार उन कारणों का निवारण कर सकी है जो प्रदूषण बढ़ाने का काम करते हैं। यह सरकारी तंत्र के गैर जिम्मेदाराना रवैये की पराकाष्ठा ही है कि शहरी विकास मंत्रालय से जुड़ी संसदीय समिति की ओर से प्रदूषण को लेकर बुलाई गई बैठक में कई विभागों के अधिकारी पहुंचे ही नहीं। सरकारी तंत्र के ऐसे रवैये के लिए एक बड़ी हद तक केंद्र सरकार भी जिम्मेदार है।

ऊर्जा प्रदेश की हकीकत

ऊर्जा प्रदेश कहे जाने वाले उत्तराखंड में ऊर्जा निगम की स्थिति किसी से छिपी नहीं है। अक्सर घाटे का रोना रोने वाला निगम इसको पूरा करने के लिए बिजली दर वृद्धि कर उपभोक्ताओं पर बोझ डालने की नीति पर काम करता रहा है। पिछले दिनों ऊर्जा निगम ने बिजली की दरों में यह कहते हुए वृद्धि की कि पिछले साल उसे महंगे दामों पर बिजली खरीद कर पूर्ति करनी पड़ी थी। हालांकि निगम की मनमानी पर विद्युत नियामक आयोग कई बार लगाम कसता रहा है, लेकिन सवाल यह है कि आखिर प्रदेश की बिजली कंपनियों को घाटा क्यों उठाना पड़ रहा है। अब हाई कोर्ट ने भी प्रदेश की बिजली कंपनियों को आईना दिखाया है। कंपनियों में कार्यरत और सेवानिवृत्त कार्मिकों को दी जा रही मुफ्त बिजली पर अदालत ने सख्ती दिखायी है। दरअसल इसकी जरूरत भी थी। निगम की इस दरियादिली का बोझ भी तो आम उपभोक्ता पर ही पड़ रहा है। अब जाकर निगम इसके लिए नीति बनाने की बात कर रहा है। विडंबना ही है कि कभी उत्तराखंड को सरप्लस स्टेट का दर्जा प्राप्त था, लेकिन वक्त बीतने के साथ सबकुछ बदलने लगा। नवंबर 2000 में राज्य बनने के बाद उपभोक्ताओं की संख्या में भारी वृद्धि हुई, लेकिन इस तुलना में उत्पादन नहीं बढ़ पाया। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि बिजली उत्पादन की लागत बढ़ी है और प्रदेश की जरूरत को पूरा करने के लिए अन्य स्रोतों से भी बिजली खरीद करनी पड़ती है। बावजूद इसके घाटे की यह सिर्फ एकमात्र वजह नहीं है। हकीकत यह भी है कि बिजली कंपनियां अपनी कमियों पर अंकुश लगाने में सुस्त रही हैं। प्रदेश में लाइन लॉस पर काबू पाना चुनौती बना हुआ है। उत्तराखंड गठन के 19 साल बाद भी बिजली चोरी रोकने में कामयाबी नहीं मिल पाई है। हरिद्वार और ऊधमसिंहनगर जैसे जिलों में ट्रांसफार्मर चोरी की घटनाएं बढ़ रही हैं। इसको लेकर निगम के कार्मिकों की भूमिका भी सवालों के घेरे में है। हालांकि अब सरकार ने बिजली चोरी पर अंकुश लगाने के लिए थाने खोलने की कवायद शुरू कर दी है, लेकिन आने वाले वक्त में ही पता चलेगा कि यह कब तक परवान चढ़ेगी। इसके अलावा उत्पादन का हाल भी बेहतर नहीं है। जलविद्युत गृहों के जीर्णोद्धार की जरूरती है, लेकिन जिस कछुआ रफ्तार से काम चल रहा है, उससे यह अंदाज लगाया जा सकता है कि इसमें कितना समय लगेगा। 21वीं सदी में भी नदियों की गाद प्रदेश में चुनौती बनी हुई है।

> अक्सर घाटे का रोना रोने वालों ऊर्जा निगमों को चाहिए कि अपनी कार्यशैली में बदलाव में खुद की खामियां दूर करें

असमानता दूर होने की उम्मीद

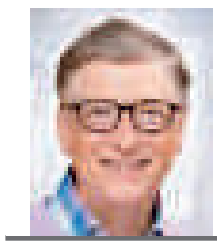

बिल गेट्स

सरकारें, कंपनियां और गैर-लाभकारी संस्थाएं सुधार के लिए प्रतिबद्ध होकर और मिलकर काम करें तो यकीनन हालात सुधारे जा सकते हैं

मेलिंडा और मैं दुनिया भर में गरीबी के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस मुहिम में हमारा पूरा ध्यान स्वास्थ्य और शिक्षा पर है। ऐसा इसलिए, क्योंकि किसी देश में गरीबी घटाने, अवसरों को बढ़ाने और समृद्धि को लाने में इन दोनों पहलुओं की सबसे अहम भूमिका होती है। दुनिया के अधिकांश हिस्सों में हमें अक्सर स्वास्थ्य और शिक्षा की दयनीय दशा के बारे में सुनने को मिलता है। अब ताजा आंकड़ों और उनकी पड़ताल करने के नए तौर-तरीकों की मदद से हम इस बात के बारीक विश्लेषण में भी सक्षम हो गए हैं कि गरीबी, बीमारी और शिक्षा दुनिया भर में जिला दर जिला और समुदाय दर समुदाय को कैसे प्रभावित कर रही है?

अच्छी खबर यह है कि बीते दो दशकों में गरीबी में खासी कमी आई है। यह सकारात्मक प्रभाव सुकून देने वाला है। हर देश में स्कूली शिक्षा बढ़ रही है। इसके साथ ही प्रत्येक देश में शिशु मृत्यु दर भी घटी है। यहां तक कि दुनिया के सबसे गरीब से गरीब देशों में भी शिक्षा एवं स्वास्थ्य के बेहद महत्वपूर्ण मोर्चों पर 99 प्रतिशत स्थानीय आबादी की स्थिति में सुधार हुआ है। इन अच्छी खबरों के बीच कुछ बुरी खबरें भी हैं। तमाम आंकड़े इन देशों में निरंतर कायम असमानता यानी विषमता की ओर भी संकेत करते हैं। सबसे बेहतर और सबसे बदतर के बीच की खाई और चौड़ी होती जा रही है। करीब पचास करोड़ लोग यानी प्रत्येक 15 में से एक व्यक्ति ऐसी जगह पर रहने के लिए मजबूर है जहां शिक्षा एवं स्वास्थ्य की बुनियादी सुविधा का अभाव है। हमें स्थिति में भले ही सुधार होता दिख रहा हो, लेकिन सबसे निचले पायदान पर मौजूद तबकों की प्रगति इस रफ्तार से नहीं हो रही कि वे गरिमापूर्ण जीवन जी सकें। इसका अर्थ यह है कि समग्र तस्वीर भले ही बेहतर दिख रही हो, लेकिन हाशिये पर मौजूद लोग अभी भी बहुत पीछे छूटे हुए हैं। ऐसी असमानता हमें हर जगह दिखाई पड़ सकती है। मिसाल के तौर पर भारत को ही लें। भारत में शिशु एवं मातृ मृत्यु दर के मामले में व्यापक सुधार के बावजूद कई राज्यों एवं जिलों के आंकड़े चुनौती पेश करते हैं। नीति आयोग का स्वास्थ्य संबंधी हालिया सूचकांक इस विषमता को दर्शाता है। इसके अनुसार केरल, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र सबसे बेहतरीन प्रदर्शन करने वाले राज्य हैं। इसकी तुलना में हम बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे जिन राज्यों में बहुत शिद्दत से काम में जुटे हैं, वहां स्थिति में उतना सुधार नहीं दिखता। इन राज्यों में बाल-मातृ मृत्यु दर ऊंची और शिक्षा का स्तर लचर बना हुआ है। महिलाओं के लिए तो यह चुनौती और भी बड़ी है। दुनियाभर में लड़कियां और महिलाएं पढ़ाई की तुलना में ऐसे कार्यों पर ज्यादा वक्त खर्च कर रही हैं जिनका उन्हें कोई मेहनताना नहीं मिलता। वैश्विक कामकाजी आबादी में लैंगिक खाई तकरीबन 24 प्रतिशत है। इसमें महिलाओं की हिस्सेदारी न केवल कम है, बल्कि पक्षपातपूर्ण कानूनों एवं नीतियों, लैंगिक आधार पर होने वाली हिंसा के चलते उनके लिए सफलता की राह तलाशना और मुश्किल हो जाता है। ऐसे में समावेशी विकास और सतत आर्थिक वृद्धि के लिए आवश्यक है कि शिक्षा एवं पोषण में निवेश बढ़ाया जाए। यह उन देशों के लिए तो एकदम अपरिहार्य है जो इस मोर्चे पर बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका अर्थ होगा कि प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं पर ज्यादा ध्यान देना होगा।

यदि उचित नियोजन एवं पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के साथ प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को साध लिया गया तो वे जरूरतमंद तबके के सभी लोगों तक पहुंच सकती हैं। इससे लोगों की स्वास्थ्य संबंधी 90 प्रतिशत जरूरतें पूरी की जा सकती हैं। इसके साथ ही गुणवत्तापरक शिक्षा के दायरे का भी व्यापक रूप से विस्तार करना होगा। 1980 में जहां भारत में 7.4 करोड़ बच्चों ने स्कूलों में दाखिला लिया था उनकी संख्या अब बढ़कर 13 करोड़ से अधिक भले ही हो गई हो, लेकिन हमें उस शिक्षा की गुणवत्ता भी परखनी होगी। ऐसा इसलिए, क्योंकि गुणवत्ता का स्तर भी अलग-अलग है। इसकी राह में आने वाले अवरोधों को दूर करने के लिए प्रयास करने होंगे। उन सामाजिक बंदिशों को तोड़ना होगा जो बहुत काबिल महिलाओं के लिए भी उनकी काबिलियत, कला और कौशल के उचित उपयोग में अवरोध उत्पन्न करती हैं। यह सब असंभव नहीं है। आखिरकार दुनिया ने यह देखा है कि हमने शिशु मृत्यु दर को घटाने में कैसे सफलता हासिल की और किस तरह शिक्षा के स्तर पर स्थिति को बेहतर बनाया जा रहा है।

दुनिया भर में नीतिगत सुधारों के दम पर लैंगिक भेदभाव घटाने में भी मदद मिली है। भारत में डिजिटल गवर्नेंस जैसे माध्यमों में निवेश की कोशिश से खासतौर से महिलाओं को अपनी तकदीर खुद लिखने का जरिया मिला है। सभी भारतीयों को बैंक खाता खुलवाने में मदद, विशेष सरकारी पहचान पत्र और वित्तीय सेवाओं के उपयोग को मोबाइल फोन से जोड़ने जैसी पहल समाज के वंचित वर्गों को भी विकास की मुख्यधारा से जोड़ने का काम कर रही हैं। इनके माध्यम से लोग जीवनोपयोगी बुनियादी ढांचे से जुड़ रहे हैं। इन सुधारों को यदि बेहतरीन गरीब-हितैषी डिजिटल सेवाओं और सक्षम कानूनों के साथ जोड़ दिया जाए तो करोड़ो लोगों के जीवन स्तर में आशातीत सुधार की पर्याप्त संभावनाएं हैं। यही वजह है कि मैं स्वयं को आशावादी कहता हूं। ऐसा इसलिए नहीं कि मुझे लगता है कि दुनिया खुद-ब-खुद बेहतर होती जाएगी। मेलिंडा और मैं कल्पनाजीवी नहीं हैं। असल में हम इस वजह से आशावादी हैं, क्योंकि हमने देखा है कि जब सरकारें, कंपनियां और गैर-लाभकारी संस्थाएं सुधार के लिए प्रतिबद्ध होकर और साथ मिलकर काम करती हैं तो यकीनन हालात सुधरते हैं।

आज ऐसी तमाम वजहें मौजूद हैं जिनसे आशावादी हुआ जा सकता है। वैश्विक रुझान प्रगति के लिए अवसरों की तस्वीर दिखाते हैं। अब यह भारत सहित पूरे विश्व पर निर्भर करता है कि हम कैसे सबके लिए इसे संभव बनाएं ताकि दुनिया के हर कोने में हर किसी को इस अवसर का लाभ मिल सके।

(लेखक बिल एंड मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन के को-चेयर हैं)

response@jagran.com

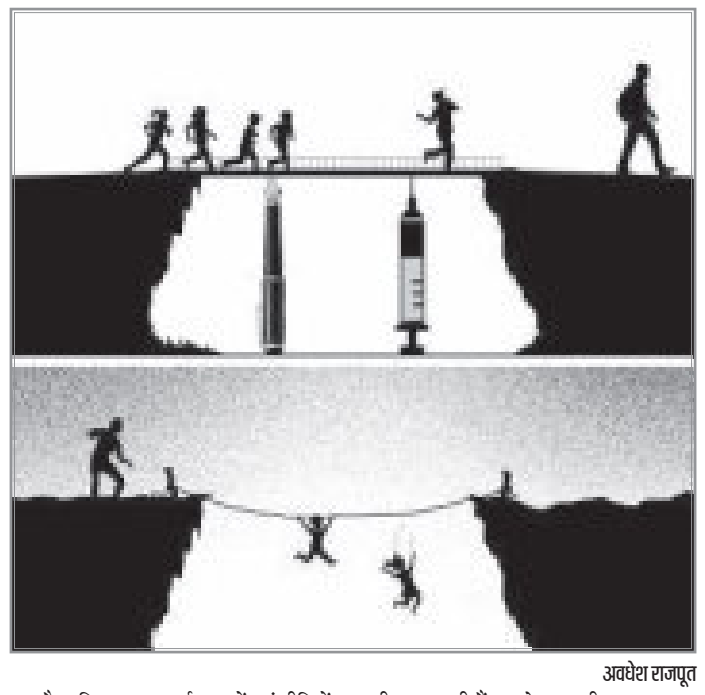

अवधेश राजपूत

समस्या बनी धान की खेती

रमेश कुमार दुबे

सरकारों को यह समझने की जरूरत है कि पराली की समस्या का स्थाई समाधान है फसली चक्र में बदलाव

उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देश, सरकारी अमले की सक्रियता, दिल्ली में सम-विषम योजना पर अमल और निर्माण कार्यों पर रोक के बावजूद दिल्ली समेत उत्तर भारत के कई राज्यों में प्रदूषण का कहर कम होने का नाम नहीं ले रहा है। इससे स्पष्ट है कि समस्या कहीं अधिक जटिल है और इसे तात्कालिक उपायों से दूर नहीं किया जा सकता। दरअसल प्रदूषित तत्व साल भर हवा में एकत्रित होते रहते हैं, लेकिन सर्दियों के अलावा प्रदूषण कहर नहीं बन पाता, क्योंकि तब हवा प्रदूषित तत्वों को समान रूप से वितरित करती रहती है। ठंड के मौसम में यह समस्या गंभीर रूप धारण कर लेती है, क्योंकि हवा की गति धीमी पड़ जाती है। प्रदूषण के लिए पराली दहन के साथ ही वाहनों, कारखानों का उत्सर्जन और कचरा जलने से पैदा होने वाला धुआं भी जिम्मेदार है, लेकिन यह भी ध्यान रहे कि दिल्ली के आसपास करीब 30 कोयला आधारित बिजली संयत्र हैं जो साल भर प्रदूषित तत्व उत्सर्जित करते रहते हैं। इसी तरह दिल्ली-एनसीआर में भारी तादाद में वाहन भी हवा में पर्टिकुलेट मैटर यानी पीएम उत्सर्जित करते हैं। आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली-एनसीआर में दिसंबर 2018 में एक करोड़ दस लाख वाहन पंजीकृत थे। इसके अलावा बड़ी संख्या में बाहरी राज्यों से वाहन आते हैं जिससे साल भर प्रदूषण फैलता रहता है। सबसे बड़ी बात यह है कि हरियाली क्षेत्र तेजी से सिकुड़ता जा रहा है। गांव हों या शहर, हर जगह पक्की संरचना के निर्माण से वह हरियाली सिमटती जा रही है, जो प्रदूषित तत्वों को सोखने का काम करती है।

भले ही उच्चतम न्यायालय के आदेश से सरकारें किसानों को पराली न जलाने के लिए सौ रुपये प्रति क्विंटल की दर से भुगतान करें, लेकिन इससे समस्या का आंशिक समाधान ही होगा। जिस पंजाब-हरियाणा में किसान धान की खेती कर रहे हैं वह इलाका मक्के की रोटी और सरसों के साग के लिए मशहूर रहा है, लेकिन हरित क्रांति के दौर में सिंचाई की सुविधाएं, उपजाऊ मिट्टी, सरकारी खरीद की व्यवस्था, मुफ्त बिजली-पानी की सौगात जैसे कारणों से धान का रकबा बढ़ता ही गया। अब इसी धान की खेती समस्या का रूप ले चुकी है।

पंजाब-हरियाणा में अक्टूबर-नवंबर में धान की फसल तैयार होती है और किसानों को गेहूं की बुआई की जल्दी रहती है इसलिए वे जल्दबाजी में खेत तैयार करने के लिए पराली जलाते है। किसानों को पराली जलाने से रोकने के लिए सब्सिडी पर हैप्पी सीडर मुहैया कराया जाता है। यह न केवल धान की पराली काटता है, बल्कि मिट्टी को समतल भी करता है। इसके बाजवूद बहुत कम किसान इसका इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि इस मशीन के इस्तेमाल से गेहूं के उत्पादन में गिरावट आती है। इसी तरह का काम रोटावेटर करता है, लेकिन समस्या यह है कि इन मशीनों को चलाने के लिए अधिक क्षमता वाले ट्रैक्टरों की जरूरत पड़ती है जिनकी कीमत कहीं अधिक है। यही कारण है कि अधिकतर किसान पराली जलाने को प्राथमिकता देते हैं। पराली की समस्या का स्थाई समाधान है फसली चक्र में बदलाव। इसके लिए सबसे कारगर हथियार है सरकारी खरीद नीति को दुरुस्त करना। यद्यपि सरकार 24 फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है, लेकिन सरकारी खरीद गेहूं, धान, गन्ना, कपास तक ही अधिक सीमित रहती है। यही कारण है कि किसान उन्हीं फसलों को प्राथमिकता देते हैं जिनकी सरकारी खरीद की पक्की व्यवस्था हो। इसी कारण देश में एक फसली खेती को बढ़ावा मिला। पंजाब और हरियाणा में मुफ्त बिजली-पानी और सब्सिडी वाले उर्वरकों ने समस्या को और बढ़ाया है।

आज जिस देश के गोदाम गेहूं, चावल से अटे पड़े हैं वह देश दुनिया का सबसे बड़ा खाद्य तेल और दालों का आयातक है। यदि सरकार सार्वजनिक खरीद, भंडारण नीति को विविधीकृत करे तो पंजाब और हरियाणा में फिर गेहूं, धान की जगह मक्का और सरसों प्रचलित हो जाएंगे। इससे भूजल संकट, मिट्टी की उर्वरता में कमी, पराली जलाने जैसी समस्याएं अपने आप सुलझ जाएंगी। इसकी शुरुआत उन ब्लॉकों से की जाए जो डार्क जोन घोषित हो चुके हैं। चूंकि यहां के किसान मजबूरी में धान की खेती कर रहे हैं ऐसे में जैसे ही उन्हें मक्का, दलहनी और तिलहनी फसलों का कारगर विकल्प मिलेगा वे उसे अपनाएंगे। इसका सकारात्मक प्रभाव समूचे उत्तर भारत पर पड़ेगा। साफ है कि तात्कालिक उपायों और राजनीतिक आरोप-प्रत्यारोप से प्रदूषण से मुक्ति नहीं मिलेगी।

response@jagran.com

तथ्य-कथ्य | किस प्रधानमंत्री के कार्यकाल में कितनी बार राष्ट्रपति शासन

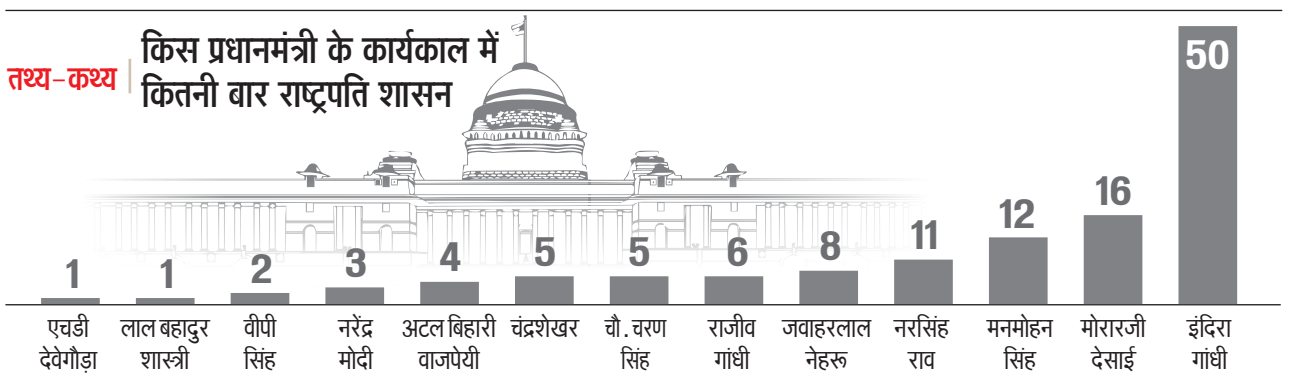

ऊर्जा

सुख का मार्ग

मनुष्य जीवनभर यही सीखने की कोशिश करता रहता है कि दूसरों के साथ कैसे रहे, दूसरों से कैसा व्यवहार हो, दूसरों को कैसे प्रभावित किया जाए, लेकिन वह यह नहीं सीख पाता कि अपने साथ कैसे रहे, स्वयं से स्वयं का व्यवहार कैसा हो, स्वयं से स्वयं का साक्षात्कार कैसे किया जाए? समस्याओं की जड़ है स्वयं को एवं स्वयं की क्षमताओं को नकारना। मनुष्य बहुत सारे कार्य करता है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च जाता है, गीता, कुरान, बाइबिल, गुरुवाणी भी जपता है। अपने शरीर की भी अवहेलना करके भाग-दौड़ में लगा रहता है। उसका सारा ध्यान संसार पर केंद्रित होता है। अपने सुख और आनंद के लिए एक घेरे में लगातार चक्कर लगाता है। जबकि सुख का स्रोत वहां है ही नहीं। खुद को हर पल में स्वीकार करना और स्व से प्रेम करना ही सुख का मूल है। 'हम जैसे भी हैं, अपने आप में बेहतरीन हैं'-यही भावना, आत्मसम्मान और विश्वास जगाएं और अपने गुण-दोषों का आकलन करें।

किसी व्यक्ति के स्वयं के साक्षात्कार न होने को दो तरह से समझा जा सकता है। पहले तो इस तरह के व्यक्ति स्वयं को समझ नहीं रहे हैं। वे सक्रिय हैं और पर्याप्त कार्य कर रहे हैं, लेकिन स्वयं के बारे में कभी सोचते ही नहीं हैं अथवा वे अपनी क्षमताओं एवं सीमाओं से अवगत नहीं हैं। इसलिए अपनी धुन में, अपनी दिशा में घूम रहे हैं। जबकि अपने गुण या दोषों को खोजकर उसी अनुसार आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि हम जो कार्य कर रहे हैं उनसे बेहतर करने की क्षमता हमारे भीतर विद्यमान है। हम केवल सांसारिक चीजों की ओर आकृष्ट हैं। निजी हितों के लिए दौड़ रहे हैं। अपने लाभ के लिए जायज-नाजायज कार्य कर रहे हैं। हमें इस प्रचलित घेरे से बाहर आना होगा। स्वयं को जानने एवं स्वयं से साक्षात्कार करने के लिए हमें नए सिरे से विचार करना होगा। इस तरह अपने आप में सुधार करते हुए हम न केवल अपनी परेशानियों और समस्याओं को हल कर सकेंगे, बल्कि सुख और आनंद का भी अनुभव प्राप्त कर सकेंगे।

ललित गर्ग

राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा जरूरी

सन्नी कुमार

भारत जैसे राष्ट्र के लिए यह अनिवार्य है कि उसकी सीमा में उसकी विविधता का सम्मान किया जाए

हाल ही में दिल्ली के कनॉट प्लेस में स्थित एक होटल ने एक प्रसिद्ध साहित्यकार को सिर्फ इसलिए भोजन करने से रोकने की कोशिश की, क्योंकि उनके गले में सफेद रंग का 'गमछा' लिपटा था। यह गमछा होटल के सभ्य परिधानों की श्रेणी से बाहर था। आखिर सभ्यता की हमारी यह विकृत कसौटी कैसे बनी होगी? इसे समझने के लिए हमें औपनिवेशिक व्यवस्था और उसकी विरासत को समझना होगा।

वस्तुतः जब किसी देश को उपनिवेश बनाया जाता है तो उपनिवेशक उसका सिर्फ आर्थिक दोहन ही नहीं करता, बल्कि उसको वह मानस के स्तर पर भी परिवर्तित करता है। साथ ही जब उपनिवेश बनाने की प्रक्रिया शुरू होती है तो निश्चित रूप से उसका एक 'नैतिक औचित्य' भी तैयार किया जाता है, ताकि उपनिवेशक को एक बर्बर आक्रांता के रूप में न देखा जाए। अंग्रेजों ने जब भारत को गुलाम बनाया तो उसके लिए उन्होंने 'श्वेत नस्ल के भार' को नैतिक आधार बनाया। इसका अर्थ यह था कि सभ्य श्वेतों का यह नैतिक दायित्व है कि वे अश्वेत भारतीयों को सभ्य बनाएं। कुल मिलाकर यह नस्लीय श्रेष्ठता का ही उद्घोष था और यही वजह है कि कुछ 'कुलीन जगहों' पर इन्हें जाने से प्रतिबंधित कर दिया जाता था। चाहे गांधी जी को पहले दर्जे के ट्रेन में यात्रा करने पर चलती ट्रेन से बाहर फेंकना हो या आलीशान होटलों में भारतीयों के प्रवेश को वर्जित करने का मामला हो। ये सब उसी नस्लीय श्रेष्ठता के बोध के परिणाम थे।

अंग्रेजों ने अपने पहनावे, भाषा, खान-पान तथा रहन-सहन को उच्च श्रेणी का बताया और भारतीयों को निर्देशित किया कि सभ्य होने के लिए इन्हीं मूल्यों को अपनाना होगा। लंबे आंदोलन के बाद देश को राजनीतिक स्वतंत्रता तो मिल गई, किंतु अचानक से औपनिवेशिक व्यवस्था में ढली मानसिक अवस्था को त्यागना संभव नहीं था। ऐसे में उस दौरान निर्मित अनेक संस्थाओं में यह 'कुलीन भाव' शेष रह ही गया। भारतीय मानस में औपनिवेशिक श्रेष्ठता के स्थापित हो जाने के विरोधाभास का ही परिणाम है कि किसी होटल में खाने के लिए 'गमछाधारी' अयोग्य घोषित कर दिया जाता है। यह भारतीय अस्मिता के विरुद्ध और संवैधानिक नैतिकता के खिलाफ है। किंतु इस विकृत व्यवस्था के प्रति एक अजीब सी सहजता है। सरकार से लेकर बौद्धिक तबकों में इसे 'वैध मानक' के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। ऐसा होना शर्मनाक है और यह गुलामी से किसी भी रूप में कम नहीं है।

एक देश के रूप में आर्थिक संपन्नता और राजनीतिक हैसियत प्राप्त कर लेना एक बात है, लेकिन एक राष्ट्रीय अस्मिता को अक्षुण्ण रखना अलग मसला है। अगर देश की राजधानी में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति हिकारत का ऐसा भाव रखा जाएगा तो बाहरी हस्तक्षेप से राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा किस प्रकार की जा सकेगी? एक आजाद और वैश्विक रूप से निरंतर प्रतिष्ठा अर्जित कर रहे राष्ट्र के लिए तो यह अनिवार्य है कि उसकी सीमा में उसकी विविधता का सम्मान किया जाए।

(लेखक बीएचयू में इतिहास के अध्येता हैं)

मेलबाक्स

सौहार्द की भावना को दें बल

विनम्र स्वीकारोक्ति का अनोखा उदाहरण शीर्षक से लिखे अपने आलेख में अद्वैता काला ने अयोध्या पर आए शीर्ष न्यायालय के निर्णय का अभिनंदन करते हुए इसे विभिन्न पक्षों के बीच स्थाई शांति का अध्याय लिखने वाला बताया है। यह सही है कि उक्त निर्णय को विराट हिंदू समुदाय के साथ-साथ आम तौर पर मुस्लिम समाज ने भी विनम्रता और मर्यादा के साथ स्वीकार किया है। यद्यपि फैसले के बाद इक्के-दुक्के फिरकापरस्त तत्वों ने अवश्य एक समुदाय विशेष को भड़काने की भी कोशिशें कीं, मगर शांति बनी रही। इसमें कोई शक नहीं कि अयोध्या का फैसला तथ्यों और साक्ष्यों के आधार पर है, न कि सिर्फ आस्था और भावनाओं के आधार पर। दुर्भाग्य की बात है कि वामपंथी इतिहासकारों ने एएसआइ द्वारा राम जन्मभूमि-बाबरी परिसर के उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों को खारिज करने की भरपूर कोशिश की, लेकिन कोर्ट की कार्यवाही में उनके सारे तर्क ध्वस्त हो गए। उदाहरण के लिए पुरातत्ववेत्ता सूरजभान ने यह स्वीकारा कि डीएन झा और आरएस शर्मा के साथ लिखी उनकी पुस्तिका 'हिस्टोरियंस रिपोर्ट टू द नेशन' दरअसल खुदाई की रिपोर्ट पढ़े बिना ही सिर्फ छह हफ्ते में ही लिख दी गई थी। एक्सपर्ट के तौर पर उपस्थित सुवीरा जायसवाल, जिन्होंने पहले यह कहा था कि मंदिर के खंभे बाद में वहां रखे गए थे, ने भी जिरह के दौरान यह स्वीकारा कि वह खुदाई स्थल पर नहीं गई थीं। बहरहाल ऐतिहासिक तथ्यों और साक्ष्यों की रोशनी में आए अयोध्या के फैसले ने 490 साल पुराने विवाद का शांतिपूर्ण समाधान कर दिया है। अब यह हम सबकी जिम्मेदारी है कि हम नकारात्मक और विभाजनकारी ताकतों के बहकावे में न आएं तथा सामंजस्य और सौहार्द की भावना को बल दें, ताकि रामराज्य की कल्पना केवल एक आदर्श भर नहीं, बल्कि यथार्थ भी बन सके।

चंदन कुमार, देवघर

नई पैसेंजर ट्रेन चलाने की मांग

रेलवे ने उपलब्ध संसाधनों का सदुपयोग करके यात्रियों को बेहतर सेवा देने के उद्देश्य से देश के विभिन्न राज्यों में पिछले दिनों, सेवा सर्विस, नाम से 9 ट्रेनों की शुरुआत की है। इनमें रोज चलने वाली दिल्ली-शामली, दिल्ली-मेरठ, दिल्ली-सोनीपत-पानीपत तथा दिल्ली-मथुरा, दिल्ली-रेवाड़ी, ट्रेनों की तरह ही दिल्ली-अलवर भी एक पैसेंजर ट्रेन चलाने की आवश्यकता है। इन नई चलने वाली ट्रेनों में दिल्ली-अलवर के रूट की अनदेखी की गई है, जबकि दिल्ली किशन गंज-सराय रोहिल्ला-गुरुग्राम-रेवाड़ी होते हुए हजारों की संख्या में दैनिक यात्री इस रूट पर सफर करते हैं, जो कि दिल्ली के विभिन्न कार्यालयों में काम करते हैं और व्यापारी वर्ग भी दिल्ली आते जाते हैं जिन्हें मजबूरी में स्लीपर क्लास में घुसकर यात्रा करनी पड़ती है, जिसके कारण दिल्ली में सर्विस करने वाले दैनिक यात्रियों एवं व्यापारियों को आरक्षित सीट वाले यात्रियों से रोज नोक-झोंक का सामना करना पड़ता है। रेल मंत्री से अपील है कि दैनिक यात्रियों की समस्या को ध्यान में रखते हुए दिल्ली-किशनगंज से अलवर के लिए यह सेवा सर्विस तुरंत लागू की जाए, ताकि इससे एक ओर रेलवे को भारी मुनाफा होगा, वहीं दूसरी ओर इस रूट पर यात्रियों को भी बेहतर रेल सेवा मिल सकेगी।

धर्मपाल भागवत, सीनियर सिटीजन

जेएनयू का आंदोलन

जेएनयू में छात्रों का बड़ा हिस्सा जिस प्रकार का आचरण करता है, उसे मर्यादित नहीं कहा जा सकता है। देश विरोधी नारे तो यहां लगते ही हैं, अब स्वामी विवेकानंद की प्रतिमा का भी अपमान किया गया है। इस समय यहां के छात्र कुछ फीस वद्धि का विरोध कर रहे हैं। सवाल उठता है कि क्या यहां पढ़ने वाले सभी छात्र गरीब होते हैं। जो वास्तव में गरीब हैं, उनको राहत दी ही जा रही है। यहां के सभी छात्र 300 रुपये माहवार कमरे का किराया देने में असमर्थ नहीं हैं। सीपीआइ नेता डैनिअल राजा, जिन्हें विधायक और सांसद पेंशन मिलकर खासी आमदनी हो जाती है, यहां अपनी बेटी की गरीबी का अगर रोना रोते हैं तो क्या कहा जाए। यदि कोई वास्तविक रूप से गरीब है तो वह राजकीय सहायता (सब्सिडी) का पात्र है, यह मानने में किसी को गुरेज नहीं, किंतु ऐसे निर्धन छात्र केवल जेएनयू में ही नहीं हैं, पूरे देश के हजारों विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हैं। फिर तो सभी विश्व विद्यालयों में ऐसी छूट दी जानी चाहिए।

aasthagarg546@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।